कृषि विकास की मुश्किलें

अवधेश कुमार सिंह
अध्यक्ष, रासा, नई दिल्ली

हमारी स्थिति यह है कि भारत में विश्व की 17% आबादी रहती है, जब कि हमारे पास मात्र 2.4% जमीन और 4% जल है। उपलब्ध जल का 80% उपयोग कृषि में हो रहा है, फिर भी 52% खेत ही सिंचित हैं। बाकी खेती मानसून पर निर्भर है। उपलब्ध कृषि–जल का 60% प्रयोग सिर्फ धान और गन्ना के उत्पादन में खर्च होता है। वर्षा से पर्याप्त जल मिलता है, पर हम जल–संचय नहीं कर पाते। देश खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर हैं, फिर भी एक बड़ी जनसंख्या भूख और कुपोषण की शिकार है। करोड़ों बच्चे स्कूल नहीं जाते। ग्रामीण इलाकों में अपेक्षित शिक्षा और स्वास्थ्य का अभाव है। लोगों के पास इन बातों पर खर्च करने की क्षमता नहीं है। देश में लगभग 140 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर 145 मिलियन किसान परिवार खेती करते हैं। नब्बे प्रतिशत से ज्यादा किसानों के पास 1 एकड़ से 1 हेक्टेयर के बीच जमीन है। अपने प्रयोग से ज्यादा पैदा हो जाय, तो सही भाव नहीं मिलता।

कृषि और ग्रामीण विकास देश के लिए अहम है। ग्रामीण इलाके में बसी दो तिहाई जनसंख्या की आजीविका कृषि और कृषि आधारित कार्यों से मिलती है। कृषि से देश के 55% कामगारों को काम भी मिलता है। 1960 के दशक में जब खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता नहीं थी, तब किसानों को जैसा कहा गया, उन्होंने वैसे काम किया और उत्पादन बढ़ा। वैज्ञानिकों की सलाह और किसानों की मेहनत ने हमें खाद्यान्न में आत्मनिर्भर बनाया, लेकिन किसानों के बारे में लोग जानना, समझना या सोचना नहीं चाहते। किसी की चिंता में उनके लिए अच्छी शिक्षा, स्वास्थ्य, विकास, और उनकी जरूरतें शामिल नहीं हैं। लोग उनके लिए चिंता जाहिर भले ही करें, पर समाधान की प्रतिबद्धता दिखती नहीं। सभी जानते हैं कि जब तक किसान खुश नहीं होंगा, तब तक कृषि का विकास स्थाई नहीं होगा तथा गाँव से शहर के लिए पलायन होता रहेगा। इसलिए किसान तथा ग्रामीण परिवेश का आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक विकास गाँव तथा शहर दोनों के लिए बहुत जरूरी है।

हम जानते है कि प्रकृति अपनी संतुलित अवस्था में ही गुणवत्तापूर्ण उत्पाद देती है। उसी स्थिति में होने वाला विकास सततता वाला विकास है। कृषि उत्पादन में प्रयुक्त केवल कुछ संसाधनों के दोहन से बढ़ी उत्पादकता, स्थायी नहीं होती। हरित क्रांति के दौरान प्रयुक्त जिन फसलों और प्रजातियों को बढ़ावा दिया, उन्हें ज्यादा खाद और पानी की जरूरत थी। उससे हमारी तात्कालिक जरूरत पूरी हुई, खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता मिली। जहाँ 36 करोड़ लोगों के लिए समुचित खाद्यान्न नहीं था, वहाँ 136 करोड़ लोगों के खाने के बाद निर्यात होता हैं। लेकिन हमारी कृषि इस विकास के दुष्परिणाम अब झेल रही है। हमारी पुरानी फसलें और प्रजातियाँ लुप्तप्राय हो गयीं, मिट्टी की संरचना बिगड़ गई, पानी की गुणवत्ता खराब हो गई, जल–स्तर नीचे चला गया और आबोहवा खराब हो गयी। जलवायु परिवर्तन का दंश झेल रहे हैं, गाँव तक में बोतल में बंद पानी पीते हैं तथा साफ हवा का अभाव है। खाने की सामग्री सुरक्षित नहीं है। तरह–तरह के रोग पैदा हो रहे हैं। स्वास्थ्य प्रबंधन का खर्च बढ़ा है। स्थिति चिंता–जनक है। सोचने को मजबूर करती है कि हमें "फार्म या फार्मा" में से क्या चाहिए? अच्छे कृषि उत्पाद लेते हुये स्वस्थ रहें या खराब उत्पाद के साथ रोगी होकर दवाइयों पर निर्भर बनें, यह हमारे निर्णय करने का समय है।

हमारी चिंता दो–तरफा और निदान की राह दो–धारी तलवार पर चलने जैसा है। मिट्टी, पानी, आबोहवा में सुधार के लिए रासायनिक खादों के प्रयोग को घटाते हुए, उत्पादकता को बनाए रखना और सतत् वृद्धि, एक चुनौती है। इसे जीतने के लिए फसल चक्रों को सुधारना होगा, निर्यात के लिए धान और चीनी की जगह मोटे अनाजों (मिलेट्स) को बढ़ाना होगा, मिट्टी का सुधार करना होगा, उन प्रजातियों को विकसित करना होगा, जो देशी खाद और जीवाश्म के साथ ज्यादा उत्पादकता के लिए उपयुक्त हों। समस्या को पूरी समग्रता में समझना और निदान करना होगा, अन्यथा हम बहुत खतरनाक मोड़ पर पहुँच जाएंगे। यह शायद जलवायु परिवर्तन का असर ही है कि 2021–2022 में 365 दिन में 240 दिन, कहीं न कहीं, देश ने कृषि के नुकसान की स्थिति को झेला है। पिछले साल गेहूं का उत्पादन कम हुआ। अब धान का उत्पादन भी कम होने की आशंका है।

चिंतन से राह मिलती है। इन परेशानियों ने पिछले कुछ समय से हमारी सरकार, नीति–निर्माताओं, वैज्ञानिकों तथा किसानों का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित किया है। अब बहुत सारे लोग वैदिक खेती, प्राकृतिक खेती, ऑर्गेनिक खेती, परंपरागत खेती की बातें कर रहे हैं। सरकार भी इस तरह की खेती को बढ़ावा देती है। खेती में छोटी काश्तकार को ज्यादा लाभदायक बनाने के लिए "किसान उत्पादक

समितियाँ" बनाने पर जोर दिया जा रहा है। लोग अपने–अपने ढंग से इस तरह की खेती से ज्यादा मुनाफा कमाने का दावा करते है, पर तस्वीर साफ होने में अभी समय लगेगा। कृषि को इन विधियों पर लाने के विषय में वैज्ञानिक मित्र बताते हैं कि कुछ स्पष्ट कह पाने के लिये अभी पर्याप्त डाटा नहीं है। लेकिन एक अच्छी बात है, कि कोई भी इन तकनीकों के सुपरिणामों को नकरता नहीं, पर उत्पादन के घटने की आशंका करता है। निर्णायक स्थिति की ओर जिस रफ्तार से बात बढ़नी चाहिए, वह नहीं हो रहा। कई विश्वविद्यालयों में इन पर शोध कार्य तेजी से चल रहा है। सीमित डाटा के साथ ही सही, इन बातों पर अब चिंतन और मनन वैज्ञानिक समूहों में होने लगा है। हमें वैदिक कृषि, भूमि सुपोषण, सतत् फसल उत्पादन, फसलों की देशी किस्में और उनका सुधार, फसल स्वास्थ्य प्रबंधन, मशीनीकरण और कटाई उपरांत प्रबंधन आदि विषयों को समग्रता और व्यापकता चर्चा कर अलग–अलग तरह की जलवायु और परिस्थिति के लिए नीतियाँ बनानी पड़ेंगी, जिससे किसान का फायदा हो, खाद्यान्न की आत्मनिर्भरता हो, कृषि संसाधन जैसे पानी, मिट्टी, आबो–हवा सब समृद्ध और संतुलित हों।

बिगड़ी स्थितियों और जरूरतों के इस दोराहे पर एक बार फिर हमारी क्षमता का इम्तिहान है। सूर्य, चंद्रमा और नक्षत्रों की आशीर्वादित धरती के इस भूभाग में हर दो माह में ऋतु और चार माह में मौसम बदलता है। वनों, पर्वतों, नदियों, झीलों और विभिन्न प्रकार की मृदा और जल की उपलब्धता के कृषि उत्पादन क्षमता का जिस दिन भरपूर उपयोग हो पाएगा, उस दिन भारत एक महाशक्ति होगा, इसमें असमंजस नहीं है। हिम्मत से राह प्रशस्त होगी और प्रकृति का साथ भी मिलेगा। असमजस को सुलझती राह एक नई मंजिल के लिए उन्नति–पथ का आधार–शिला साबित होगी।